अहिंसा द्वारा व्यक्तित्व विकास

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय,
राजस्थान

अहिंसा जैन आचार शास्त्र का केन्द्रीय तत्त्व है। आगमों और तदुपजीवी प्रायः सभी ग्रन्थों में अहिंसा की महनीयता का वर्णन किया गया है। जैन श्रमण अहिंसा का सर्वश्रेष्ठ साधक है। वह मन, वाणी और काय से हिंसा नही करता, न करवाता है और न हिंसा करने वाले का अनुमोदन ही करता है। आचारांग में अहिंसा का मूलसूत्र प्राप्त होता है– **''सव्वे पाणा, सव्वे भूता, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा।''**[1] किसी भी प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का हनन नहीं करना चाहिए, उन पर शासन नहीं करना चाहिए, उन्हें दास नहीं बनाना चाहिए, उन्हें परिताप नहीं देना चाहिए और उनका प्राण वियोजन नहीं करना चाहिए। यह अहिंसा धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है। अर्हतों ने अहिंसा धर्म का सबके लिए प्रतिपादित किया है। सूत्रकृतांग में अहिंसा को ज्ञान का सार कहा गया है–

एयं खु णाणिणो सारं,, जं न हिंसति कंचण।
अहिंसा समयं चेव, एतावंतं विजाणिया।।[2]

ज्ञानी पुरुष का यही उत्तम ज्ञान है कि वे किसी जीव की हिंसा नहीं करें, अहिंसा का तात्पर्य ही है कि 'किसी जीव की हिंसा न करना'। जिसे इस अहिंसा सिद्धान्त का ज्ञान नहीं है, उसे किसी अन्य तत्त्व का ज्ञान नहीं हो सकता। भगवान महावीर के प्रवचन में सबसे अधिक बल अहिंसा पर ही था–

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं।
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्व भूएसु संजमो।।
जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा।
तं जाणमजाणं वा, न हणे, न हणावए।।
सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं, न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं।।[3]

तीर्थंकर भगवान् महावीर ने श्रमणाचार में प्रथम स्थान अहिंसा को दिया है, क्योंकि अहिंसा को उन्होंने सूक्ष्मरूप से देखा था। उनके अनुसार सभी जीवों के प्रति संयम रखना अहिंसा है। लोक में जितने भी त्रस या स्थावर प्राणी हैं, साधु या साध्वी, जानते या अजानते उनका स्वयं हनन न करें और न ही दूसरों से हनन करावें, तथा हनन करने वाले का अनुमोदन भी न करें। सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं। इसलिए निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी प्राणिबध को घोर जानकर उसका परित्याग करें।

प्रमत्तयोग से प्राणों का व्यपरोपण–वियोग करना हिंसा है। कषायसहित आत्मा का परिणाम प्रमत्त कहलाता है। इस प्रमत्त का योग अर्थात् कषाय सहित परिणामों से मन–वचन काय की क्रिया का योग प्रमत्तयोग है। सभी जीवों पर

दया, करुणा का भाव होना अहिंसा महाव्रत है। अहिंसा अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक रहना है। साथ–साथ दूसरे जीवों के अस्तित्व के प्रति जागरूक होना भी है। यह जागरूकता आत्मतुला के सिद्धान्त से विकसित होती है। आत्मतुला का अर्थ है अपने समान अन्य जीवों को समझना। भगवान् महावीर ने कहा आत्मतुला का अन्वेषण करो। संसार में प्रत्येक मानव को सुख–दुःख का सम्वेदन प्रत्यक्ष होता है, इसलिए सुख–दुःख स्वसम्वेदन प्रत्यक्ष है। दूसरे के सुख–दुःख की अनुभूति स्वसम्वेदन के आधार पर होती है। जैसे अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है, वैसे ही दूसरों को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है। यह आत्मतुला का ज्ञान हिंसा विरति या अहिंसा का अवलम्बन बनता है।

अहिंसा एक महान् मार्ग है। हर कोई मनुष्य इस मार्ग पर नहीं चल सकता। जो पराक्रमी, वीर होते हैं, वे ही इस महान् पथ के पथिक बनते हैं वीर पुरुष महापथ के प्रति समर्पित होते हैं।अहिंसा कायरों का मार्ग नहीं है, यह पराक्रमशालियों का मार्ग है। शान्ति की आराधना करने वाले जितने महापुरुष हुए हैं, वे सब इस महापथ पर चले हैं, चलते हैं और चलेंगे। फिर भी यह संकीर्ण नहीं होता। इसलिए यह महापथ कहलाता है।

अहिंसा से तात्पर्य है– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस– ये छह कायिक जीव, इन्द्रिय, गुणस्थान, मार्गणा, कुल, आयु और योनि– इनमें सब जीवों को जानकर उठने–बैठने–ठहरने आदि सभी क्रियाओं में हिंसा आदि का त्याग करना अहिंसा महाव्रत है।

'महव्वतादौ पाणातिवाताओ वेरमणं पहाणो मूलगुण इति, जेण अहिंसा परमो धम्मो। सेसाणि महव्वताणि एतस्सेव अत्थविसेसणाणिति तदणंतरं।'[4] महाव्रतों में प्राणातिपातविरमण प्रधान मूलगुण है। अहिंसा परमधर्म है। शेषमहाव्रत अहिंसा को विशिष्ट बनाते हैं। अतः क्रम की दृष्टि से अहिंसा का प्रथम स्थान है। अहिंसा के महत्व के कारण ही इसे आत्मा कहा गया है––

आया चेव अहिंसा, आया हिंसत्ति निच्छओ एसो।
जो होइ अप्पमत्तो अहिंसाओ, हिंसओ इयरो।।[5]

निश्चय नय की दृष्टि से आत्मा ही अहिंसा है और वही हिंसा है। जो अप्रमत्त है, वह अहिंसक है। जो प्रमत्त है, वह हिंसक है।

अहिंसा के रूप

अहिंसा की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर इसके दो रूपों पर प्रकाश पड़ता है–निषेधात्मक और विधेयात्मक। निषेधात्मक रूप में किसी भी जीव का तीन करण और तीन योग से हिंसा न करना अहिंसा है। अहिंसा, हिंसा का अभाव है। अहिंसा का अर्थ है–हिंसा का न होना, हिंसा की भावनाएं और हिंसा जन्य क्रियाओं का अभाव होना। अहिंसा के इसी अर्थ में 'सर्वप्राणातिपात विरमण'[6] शब्द का भी प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ है 'सभी प्रकार की जीवहिंसा से निवृत्ति। यह अर्थ, अहिंसा के निषेध–मूलक पक्ष को प्रगट करता है। वस्तुतः अहिंसा केवल निषेध में ही नहीं अपितु विधेयरूप में भी है। अहिंसा को पूर्णरूप से समझने के लिए उसके विधेयात्मक पक्ष को भी समझना होगा।

प्रश्नव्याकरण–सूत्र में अहिंसा के साठ नाम मिलते हैं।[7] अहिंसा के कार्य और अर्थ के आधार पर उसकी व्यापकता दिखायी गयी है। उनमें से अधिकांश अहिंसा के विधेयात्मक पक्ष को प्रगट करते हैं–जैसे–निर्वाण, समाधि, शान्ति, कीर्ति, दया, क्षान्ति, सम्यक्त्वाराधना बोधि, नन्दा, कल्याण, मंगल, रक्षा, शिव, अप्रमाद, विश्वास, पवित्रा, विमल, प्रभासा, निर्मलकर आदि अहिंसा के विधेयात्मक पक्ष को प्रगट करते हैं।

आगमों में अहिंसा के दोनों रूपों पर प्रकाश डाला गया है। आगमों में षट्काय को तीन करण और तीन योगों से हानि न पहुंचाने का जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है, वह अहिंसा का निषेधात्मक रूप है। अहिंसा का विधेयात्मक पक्ष भी जानना उतना महत्वपूर्ण है, जितना कि निषेधात्मक पक्ष को जानना। यदि हम अहिंसा के निषेधात्मक पक्ष को ही अहिंसा मानकर बैठ जाते हैं तो यह अहिंसा की अपूर्ण समझ है। अहिंसा को पूर्णरूप से समझने के लिए उसके विधेयात्मक पक्ष का भी ज्ञान और आचरण आवश्यक है।

ज्ञान की उपादेयता और अज्ञान की हेयता

सभी भारती दर्शनों में ज्ञान को उपादेय और अज्ञान को हेय माना गया है। आगम ,उपनिषद्,सांख्य ,योग,न्याय वैशेषिक और वेदान्त सच्छास्त्र हैं। ये सभी दर्शन अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञानरूपी प्रकाश से लोक को प्रकाशित कर रहे हैं। इनका बोध ही सम्यक् बोध है।भारतीय दर्शन को श्रमण और वैदिक दो भागों में विभाजित किया गया है। एक में यदि अहिंसा पर अधिक बल दिया गया है तो दूसरे में ज्ञान पर। आगमों में यहां तक कह दिया गया है कि **'जस्स णत्थि इमा णाई, अण्णा तस्स कओ सिया'**[8] अर्थात् जिसे अहिंसा धर्म का ज्ञान नहीं है, उसे अन्य तत्त्वों का ज्ञान कहां से होगा? अहिंसा जीवन है और हिंसा मृत्यु। जन्म और मृत्यु जीवन के दो छोर हैं। आगमों में जन्म और मृत्यु दोनों से ऊपर उठने की बात कही गयी है। 'न जीने की आकांक्षा करो और न मरने की इच्छा करो। जीवन और मरण दोनों में आसक्त मत बनो।'[9] . जन्म–मृत्यु के प्रवाह को तैरने वाला मुनि तीर्ण, मुक्त और विरत कहलाता है।[10]

बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय की कामना

भारतीय दर्शनों में मानवीय आचरण को नियन्त्रित करने के लिये दिशा निर्देश दिये गये हैं। यह निर्देश किसी एक व्यक्ति या किसी एक जाति के लिये नहीं अपितु समस्त प्राणिमात्र के लिये आचरणीय हैं। इसमें बहुजन सुखाय और बहुजन हिताय की कामना की गयी है––**'असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माअमृतं गमयेति।**[11] अर्थात् मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो, मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मुझे मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो। यह मानव की अनादिकालिक शाश्वतिक समीहा है। वैचारिक दृष्टि से यह बात निर्विवाद है कि मनुष्य समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ ज्ञानवान् एवं चिन्तक है। उसे अपने स्वरूप एवं लक्ष्य दोनों की विधिवत् जानकारी है। प्रमादवश अज्ञान या मिथ्यात्व का आलम्बन कर मनुष्य इस भवचक्र में भटक रहा है।

सौभाग्य से उसकी दृष्टि जब मिथ्यात्व पराङ्मुख होती है, तब वह अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है और उसकी यह भावना बलवती हो जाती है तथा वह श्रुतिवचनों का अनुसरण कर उसके लिये विहित आचरण का अनुष्ठान करता है। जैन धर्म निवृत्ति–प्रधान है और आज का युग प्रवृत्ति प्रधान। सांसारिक विषय भोगों से बचना ही निवृत्ति है। यह जीवन कुश की नोक पर टिके हुए अस्थिर एवं वायु से प्रकम्पित होकर गिरने वाले जलकण की भांति क्षणभंगुर है।[12] भगवान् महावीर ने जब यह अमृत वाणी सुनायी कि सबको अपना जीवन प्रिय है अतः न किसी को मारें, न किसी पर शासन करें, न किसी को दास बनाएं, न किसी को परिताप दें और न किसी का प्राण वियोजन करें।[13] उस युग में इस वाणी का जो महत्त्व था आज उससे कहीं अधिक महत्त्व है, क्योंकि उस समय हिंसा के साधन उतने व्यापक नहीं थे, किन्तु आज के युग में परमाणविक अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग मानव–संस्कृति के सारे विकास को पलक झपकते ही नष्ट कर सकता है। भगवान् महावीर इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि अपरिग्रह के बिना अहिंसा सम्भव नहीं है। इसीलिए उन्होंने सब कुछ त्याग कर अहिंसा का पालन किया। शोषण मुक्त समाज के निर्माण के लिए अपरिग्रह सिद्धान्त का आचरण आवश्यक है। अतः व्यक्ति के जीवन दर्शन में अहिंसा का प्रमुखतम स्थान है।

संदर्भ ग्रन्थ–

1. आचारांग भाष्य 4/1/1
2. सूत्रकृतांग 1/4/10
3. दशवैकालिकसूत्र, 6/8, 9, 10
4. दशवैकालिक अगस्त्यसिंह चूर्णि पृ. 82
5. दशवैकालिक अगस्त्यसिंह चूर्णि पृ. 82
6. दशवैकालिकसूत्र–षड्जीवनिका 4/11
7. प्रश्नव्याकरण सूत्र – 6/21
8. आचारांग भाष्य – 4/1/8
9. जीवियं णाभिकंखेज्जा, मरणं णोवि पत्थए।
   दुहतोवि ण सज्जेज्जा, जीविते मरणे तहा।। आचारांगभाष्य 8/8/4
10. एस ओहंतरे मुणी, तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए।। आचारांगभाष्य 5/3/61
11. बृहदारण्यकोपनिषद् 1/3/28
12. से पासति फुसियमिव, कसग्गे पणुन्नं णिवतितं वातेरितं।
    एवं बालस्स जीवियं, मंदस्सअविजाणओ। आचारांगभाष्य 5/1/5
13. आचारांगभाष्य 4/1/1